

भारतीय अर्थव्यवस्था के आयाम में गाँधी दर्शन

अनुज कुमार

शोधार्थी

स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, ल0 ना0 मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा-846004

प्रस्तावना :

गाँधी जी के आर्थिक विचार अहिंसात्मक मानवीय समाज की अवधारणा से ओत-प्रोत हैं। उनके आर्थिक विचार आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित करने वाले एवं भौतिक वादी के विरोधी हैं और उनके बहुत मौलिक सोच थी। यह सोच उस समय के प्रचलित विचारों की परवाह न कर सीधे-सीधे ऐसी नीतियों की मांग करती थी जिससे गरीबों को राहत मिले। साथ ही उन्होंने ऐसे सिद्धांत अपनाने को कहा जिनसे दुनिया में तनाव व हिंसा दूर हो तथा पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। गाँधी जी अपने आर्थिक विचारों में वे जॉन रस्किन से सर्वथा प्रभावित थे। उन्होंने उसकी कृति "अन टु दिस लास्ट" का "सर्वोदय" के नाम से अनुवाद किया और यही उनके आर्थिक सिद्धांत की आधारशिला है।

गाँधी जी अर्थशास्त्रियों के प्रायः समस्त परम्परागत विश्वासों का विरोध करते हैं एवं उसके बारे में अपने विचार प्रकट करते हैं कि "सामाजिक मनोभाव के प्रभाव से निरपेक्ष रह कर सामाजिक कार्यकलाप की उपयोगी संहिता बनायी जा सकती है"¹ इस प्रकार गाँधी जी का अर्थशास्त्र के प्रति यह उपागम इस विश्वास पर आधारित है कि आत्मा की सत्ता है तथा समस्त विवेकपूर्ण व्यवहारों का लक्ष्य उसे आवश्यकताओं के बन्धन से मुक्त कर परम आनन्द की प्राप्ति करना है। अपनी आवश्यकताओं को क्रमशः न्यूनतम करते हुए मनुष्य "जीवन्मुक्त" स्थिति की ओर अग्रसर होता है। इतिहास में इसके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। मनुष्य का सुख वस्तुतः संतोष में निहित है, जो असंतुष्ट रहता है वह अपनी कामनाओं का दास बन जाता है। दुनिया के तमाम संतों ने उच्च स्वर में घोषित किया है कि मनुष्य अपना निकृष्टतम शत्रु भी बन सकता और उत्कृष्टतम मित्र भी। अब स्वतंत्र रहना या दास बन जाना उसकी मुट्टी में है।² वे चाहते हैं कि हम उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करें जो हमारे समुचित जीवन के लिए बहुत जरूरी हो। वे मानते थे कि सुखी जीवन का रहस्य त्याग में है। त्याग ही जीवन है। भोग का अर्थ तो मृत्यु है।³

गाँधी जी का मत था कि समाज उन समस्त सुख-सुविधाओं का उपयोग करें जिनसे मानव-जीवन सुखद और उसकी जीवन यात्रा सुगम हो। वे बिजली, जहाज निर्माण,

लौह उद्योग, यंत्र निर्माण तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं को जीवन के लिए उपयोगी मानते थे। वे इनके विरुद्ध नहीं थे किन्तु चाहते थे कि हम इन दो बातों पर विचार करें, प्रथमतः समस्त समाज का अधिकतम कल्याण इसका अर्थ यह है कि अपनी भौतिक आवश्यकताओं की वृद्धि की उन्मादग्रस्त दौड़ में हम अपने जीवन का वास्तविक उद्देश्य ही न भूल जायें। इस तरह उसकी यह माँग नहीं है कि लोग एकान्त में संतों की तरह रहे। उसकी माँग है कि वे कम स्वार्थी हों, कम लोभी हों, कम धनोन्मादी हों, कम स्वकेन्द्रिक हों।⁴

गाँधी जी न केवल आर्थिक जीवन का महत्व स्वीकार कर उसे उचित स्थान देते थे, बल्कि यह भी मानते थे कि महत्वपूर्ण पदार्थों के उत्पादन एवं वितरण की पद्धतियों का नैतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। इसीलिए उनका लक्ष्य था सत्य एवं अहिंसा पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना। उन्होंने बहुत शीघ्र ही इसका अनुभव किया कि श्रम के नैतिक एवं भौतिक शोषण पर टिकी उत्पादन की पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसी समाज व्यवस्था का गठन कठिन है। इसलिए उन्होंने ऐसी आर्थिक व्यवस्था का विस्तृत प्रतिपादन किया जो उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति को समाप्त कर सकती है।⁵

इस प्रकार राज्य का एकाधिकार एक ओर तो जनता को अपना आर्थिक दास बनाता है, दूसरी ओर उत्पादन की केन्द्रीकृत पद्धति के कारण यह निश्चय ही या तो बेरोजगारी में वृद्धि करेगा या ऐसी अनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन करेगा जो अन्ततोगत्वा जनता को अपना जीवन-लक्ष्य विस्मृत करने के लिए विवश करेगी। अतएव गाँधी जी ऐसी अर्थनीति चाहते हैं जिसमें कार्य का समान अवसर प्रदत्त होने के कारण जनता में उत्पादन का न्यायोचित वितरण हो। जिसमें व्यक्ति एवं परिवार अपनी आर्थिक जीविका पर समुचित नियंत्रण रख सकें।

इस संबंध में स्मरण रखने योग्य दूसरी बात शारीरिक श्रम पर दिया गया है। गाँधी जी के अनुसार इस सिद्धांत का उल्लंघन ही वर्तमान आर्थिक वेषम्यावस्था का मूल कारण है उनका कहना है, “यह चरम दुर्भाग्य की बात है कि लाखों व्यक्तियों ने अपने हाथों का हाथों की तरह उपयोग करना छोड़ दिया है। मानवों के उपयुक्त इस दान की आपराधिक उपेक्षा करने के कारण हमसे प्रकृति भयंकर बदला ले रही है।”⁶ उनका निश्चित मत है कि पुराने जमाने में भारतीय किसान अधिक सुखी थे, क्योंकि अवकाश के छः महीनों में सहायक उद्योग का वे आश्रय ले सकते थे। उक्त पुस्तक लिख चुकने के बाद 1908 में उन्होंने यह खोज की कि ऐसा प्रमुख सहायक उद्योग चर्खा हो सकता है। गाँधी जी के शब्दों में, “1908

में लंदन में मैंने चर्खे को खोज निकाला। मैं वहीं दक्षिणी अफ्रिका के एक प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में गया था। उसी समय में बहुत से निष्ठावान भारतीय छात्रों एवं अन्यो के निकट संपर्क में आया। भारत की परिस्थिति के बारे में हमने लम्बे-लम्बे वार्तालाप किये और बिजली की कौंध की तरह मुझे दीख गया कि चर्खे के बिना स्वराज नहीं मिल सकता। मुझे तुरंत ज्ञात हो गया कि हममें से प्रत्येक को सूत कातना पड़ेगा, किन्तु तब मैं करघे और चर्खे का अन्तर नहीं जानता था और मैंने हिन्द स्वराज में चर्खे के अर्थ में करघे का प्रयोग किया है।⁷

इस तरह हम देखते हैं कि चर्खा जो पहले गरीबों का सहारा भर था क्रमशः उन्हें अमीरों से मुक्त करने का तथा उच्च वर्ग एवं जनता को नैतिक संबंध सूत्र से युक्त करने का साधन बन गया। आगा खॉ के महल से छूटने के बाद उन्होंने उसको नया स्वरूप दिया। वह अहिंसक समाज व्यवस्था के प्रतीक के रूप में सारे संसार के लिए उसका संदेशवाहक एवं अणुबम का प्रतिकारक बन गया।

गाँधी जी की दिलचस्पी केवल चर्खे में थी। अवश्य ही भारतीय स्थिति में चर्खे को प्रमुखता मिल गयी, किन्तु केवल चर्खे के क्षेत्र में ही नहीं, उत्पादन के समस्त क्षेत्रों में कृषि में तथा यथासंभव अन्य उद्योगों में भी वे विकेन्द्रीकरण को पसन्द करते थे।⁸ अन्य ग्रामोद्योगों के संबंध में भी उनकी यही धारण थी। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण केवल स्थान की दृष्टि से ही प्रस्तावित किया गया है। उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से नहीं। यदि विकेन्द्रीकरण में उत्पादन की अद्यतन पद्धति एवं युक्तिकरण की मदद ली जाये तो महँगे उत्पादन का दोष बहुत अंशों में कम किया जा सकता है।

इस संदर्भ में गाँधी जी कहते थे कि “प्रत्येक गज की दृष्टि से यद्यपि खादी मिल के कपड़े से महंगी हो सकती है, किन्तु अपनी समग्रता में एवं ग्रामीणों की दृष्टि से सर्वाधिक कम खर्चीला एवं अप्रतिद्वन्द्वी व्यावहारिक प्रस्ताव है। यही बात अन्य ग्रामोद्योगों के लिए भी सही है।⁹”

आधुनिक अर्थशास्त्र की सर्वाधिक क्लान्तिकर एवं जटिल समस्याओं में एक है वितरण की समस्या। केनन ने राष्ट्रीय धन के अनुचित वितरण में ही “विषमता और उसके कारण खोजे हैं।¹⁰ वस्तुतः प्रायः प्रत्येक अर्थशास्त्री ने अपने दिमाग पर जोर डाल कर इस समस्या को सुलझाने के लिए अत्यन्त जटिल सूत्र की रचना की है। समाजवादी अर्थशास्त्री उद्योगों के राष्ट्रीकरण द्वारा इस समस्या से, कम से कम इसके सर्वाधिक क्लान्तिकर रूप से

मुक्ति पाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु गाँधी जी द्वारा अभिकल्पित विकेन्द्रीकृत उत्पादन से यह समस्या अपने आप हल हो जाती है।

श्री राजगोपालाचार्य ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से इसकी व्याख्या करते हुए 1928 में कहा था “धन पैदा कर लेने के बाद उसका सम वितरण आप नहीं कर सकते। आप इसके लिए मनुष्यों को राजी करने में सफल नहीं हो सकते। किन्तु आप धन इस प्रकार पैदा कर सकते हैं कि उसके पहले ही उसका सम-वितरण निश्चित हो जाये।”¹¹ गाँधी जी इसी प्रकार की युक्तियाँ देते हैं। उनका मत है : “एक क्षण के लिए यदि यह मान भी लिया जाये कि यंत्रों से मानवता की समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती है, तो भी उनके चलते उत्पादन कुछ विशेष क्षेत्रों में केन्द्रित हो जायेगा जिसके परिणामस्वरूप आपको वितरण को नियंत्रित करने के लिए अनेक प्रकार के कदम उठाने पड़ेंगे, जबकि जहाँ उनका प्रयोजन है, यदि उत्पादन और वितरण दोनों उन्हीं क्षेत्रों में हो तो वे अपने आप नियंत्रित हो जायेंगे और धोखाधड़ी की संभावना कम एवं सट्टेबाजी की बिल्कुल नहीं रह जायेगी।”¹²

आधुनिक अर्थशास्त्र में राजस्व आर्थिक अध्ययन का एक प्रमुख अंग है, इसकी महत्व इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि कल्याणकारी राज्य में उसका वार्षिक बजट देश की विशेष आर्थिक स्थिति के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

गाँधी जी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में कहा करते थे कि राजनीतिक सत्ता की विकेन्द्रीकरण के साथ ही साथ राजस्व की समस्या भी बहुत सरल हो जायेगी। सदियों की तरह गाँधी जी राज के संगठन के संबंध में हमें नहीं बताते, जो हो, एक बात जो बहुत महत्वपूर्ण है और हमारा ध्यान आकृष्ट कर सकती है वह है मद्यनिषेध पर उनका जोर देना। प्रायः ऐसा तर्क दिया जाता है कि “मद्यनिषेध” नीति से राजकोष में कमी होगी। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि गाँधीवादी समाज-व्यवस्था में राजस्व की बहुत सी अत्यधिक खर्च वाली मदें जैसे सेना आदि या तो एकदम होगी ही नहीं तो उसमें बहुत कांटछांट कर दी जायेगी, जहाँ तक सामान्य व्यय का प्रश्न है, यह सुविदित है कि गाँधी जी इस पर सदा जोर देते रहे कि राज-धन का सदुपयोग आखिरी पैसे तक किया जाना चाहिए। उनका यह भी मत था कि सरकारी कर्मचारियों एवं राज्य से वेतन प्राप्त करने वाले अन्य व्यक्तियों को राज्य से जितना कम लेना संभव है उतना ही लेना चाहिए। उनका उद्देश्य होना चाहिए सेवा, पुरस्कार नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि गाँधी जी का यह भी मत था कि कर, धन के बदले श्रम द्वारा चुकाना चाहिए, उनका तर्क है –

“श्रम के रूप में किया गया भुगतान राष्ट्र को शक्तिशाली बनाता है। जहाँ लोग समाज सेवा के लिए स्वेच्छया श्रम करते हैं, वहाँ धन का विनिमय अनावश्यक हो जाता है। कर वसूल करने और हिसाब रखने का झंझट बच जाता है और परिणाम समान रूप से अच्छे होते हैं।”¹³

गाँधीवादी आर्थिक संरचना की रूपरेखा में अन्तिमरूपता था और अनम्यता जैसी कोई बात नहीं है। अन्य विषयों के समान यहाँ भी जिस आधारभूत सिद्धांत की चर्चा है उसका आधार है – मनुष्य, उसकी स्वतंत्रता एवं सुरक्षा का ध्यान रखना।

आदर्श आर्थिक संरचना में भोजन, काम एवं स्वतंत्रता के विषय में सबको आश्वस्त होना चाहिए। गाँधी जी ने बहुत पहले यानि 1928 ई0 में ही घोषणा की थी।

“मेरे विचार से भारत की और सारी दुनिया की आर्थिक संरचना ऐसी होनी चाहिए कि भोजन एवं वस्त्र के अभाव का कष्ट किसी को न हो। दूसरे शब्दों में प्रत्येक को इतना पर्याप्त काम मिलना चाहिए कि वह अपना भरण-पोषण कर सके। सार्वभौम रूप से इस आदर्श की पूर्ति तभी हो सकती है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में हो। सबको इनकी उपलब्धि उतनी ही सहजता से होनी चाहिए जितनी सहजता से ईश्वर प्रदत्त वायु एवं जल की होती है या होनी चाहिए। उन्हें दूसरों का शोषण करने का साधन नहीं बनने देना चाहिए। इन पर भी देश, राष्ट्र या व्यक्ति समूह का एकाधिकार अन्याय होगा। इसे सरल सिद्धान्त की उपेक्षा ही उस दरिद्रता का कारण है जो हमें न केवल इस देश में बल्कि संसार के अन्य हिस्सों में भी देख पाते हैं।”¹⁴

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गाँधीवादी अर्थव्यवस्था का आधार सामाजिक न्याय एवं आर्थिक स्वतंत्रता है और आर्थिक व्यवस्था हमारी अधिकांश गतिविधि को परिवेष्टित करती है। इन साधनों का प्रयोग मानसिक एवं शारीरिक क्रियाकलाप में परिलक्षित होता है। ये क्रियाकलाप एक ओर तो मानव के जीवनोद्देश्य से नियंत्रित होते हैं, दूसरी ओर उसके सीमित भौतिक साधनों द्वारा सीमाबद्ध। अतएव ऐसे कुछ नियम अवश्य होने चाहिए जिनसे ये क्रियाकलाप शासित होते हो। ये नियम ही आर्थिक सिद्धान्त की रचना करते हैं। इस संदर्भ में सहभागिता इसकी रीढ़ है।

स्रोत संदर्भ सूची :-

1. सर्वोदय, (हिन्दी), पृ0-9
2. हरिजन, 1 फरवरी, 1942
3. हरिजन, 24 फरवरी, 1946
4. गाँधी एण्ड स्टालिन, पृ0-146
5. उपर्युक्त
6. यंग इंडिया, 17 फरवरी, 1981
7. यंग इंडिया, 20 सितम्बर, 1928
8. हिन्द स्वराज, 1933, पृ0-153 - 54
9. यंग इंडिया, 24 मई, 1928
10. ए रिव्यु ऑफ इकनॉमिक थ्योरी, 1929, पृ0-301 - 2
11. यंग इंडिया, 24 मई, 1928
12. सेन्ट-पर-सेन्ट स्वेदशी, पृ0-146
13. डॉ0 रंगनाथ प्रसाद, गाँधी दर्शन-विश्वशांति की ओर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, नवम्बर, 2001, पृ0-296
14. उपर्युक्त

